बीन की तान पर नागिन

रामअवतार बैरवा

गीत, कविता की मूल और श्रेष्ठ विधा रही है। यह भी कहा जा सकता है गीत विधा ही कविता की सच्ची कसौटी है। आदिकाल में जो व्यक्ति आत्मीय और तत्वज्ञ भाव पूरी लय, ताल, सुर और मात्रा के साथ किसी बात को पूर्ण मनोयोग और श्रद्धा के साथ शब्दों से परे शब्द गढ़ सकता था, वह कवि माना जाता था। धीरे-धीरे इसमें अनेक राग मात्राएं, लय, चरण और छंद विकसित होते गए और कविता की यात्रा सुगम होती चली गई। छंद के मात्रिक, वर्णिक और मुक्त विधान तय हुए । इन्हीं सब से कविता के गुण - अवगुण का मापन होने लगा । जिसको, जिस तरीके से अपने भाव गढ़ने में सहजता महसूस हुई, वो उस विधा का उदाहरण बनता चला गया । आदिकाल से आधुनिकता तक एक छंद ने अपनी गति, प्रगति और सुगमता को पूरी भावना, संवेदना, नाटकीयता और बेखोटीयता के साथ खुद को कायम रखा , वो है कुण्डलिया छंद । दोहा और रोला के महासंयोजन से निर्मित इस छंद ने हमारी संस्कृति , ग्रामीण परिवेश, और व्यंग्य को बखूबी रक्षा की है । जन कवि गिरधर से लेकर त्रिलोक सिंह ठकुरेला तक ने इस विधा को आम जन तक पहुंचाने में अहम भूमिका निभाई है ।

इनमें न केवल कबीर और तुलसी सरीखी चेतनता समाई है वरन कवित की सारी गहराइयां भी भरी हुई हैं । प्रसंगवश दो कुण्डलिया से बात को आसान करने का प्रयास है -

सांई सब संसार में, मतलब का व्यवहार।
जब तक पैसा गांठ में, तब तक ताको यार ।
तब तक ताको यार, संग ही संग डोले।
पैसा रहे न पास, यार मुख से नहिं बोलें।
कहे गिरिधर कविराय, जगत यही लेखा भाई।
करत बेगरजी प्रीति यार बिरला कोई साँई।

रत्नाकर सबके लिए, होता एक समान ।
बुद्धिमान मोती चुने, सीप चुने नादान ।।
सीप चुने नादान, अज्ञ मूंगे पर मरता ।
जिसकी जैसी चाह, इकट्ठा वैसा करता ।
'ठकुरेला' कविराय, सभी खुश इच्छित पाकर ।
हैं मनुष्य के भेद, एक सा है रत्नाकर ।।

ये कुण्डलिया महज़ इस विधा को समझने का सूत्र नहीं वरन प्रतिमान है इस विधा की प्रतिष्ठा और अस्मिता का । परिस्थिति और माहौल के साथ इस विधा ने खुद को हरदम बदला है, नये अर्थ और प्रतिमान गढ़ें है । कुण्डलिया लिखने वाले अगर आज भी अपनी लय, ताल और सुर गढ़ें ।

कुण्डलिया छंद की सबसे बड़ी खूबी है इसकी सहजता । और सबसे बड़ी खामी है शब्दों की 144 वीं धारा में बंधकर भी शब्दों का दोहराव । दो विधाओं के मिलनवश इसने अपनी पहचान खो दी है और दूहरो की धुन पर नाचने लगी है ।

इस विधा ने भी बहुत बड़े -बड़े कवियों ने लिखा पर वे अधिक समय तक इससे जुड़े नहीं रह सके । अपने आप को दोहराकर, गज़लकार, कहलवाना तो सबने बेहतर समझा पर कुण्डलियाकार कहलवाने में उन्हें ऐसा लगा, जैसे कोई अपशकुन जैसा बात हो या किसी ने उन्हें सांप की संज्ञा दे दी हो । जब कि अखबारों में अगर कविता की कोई नियमित विधा छपती रही और मंच पर सराही जाती रही तो वह विधा कुण्डलिया छंद ही है ।

एक बार मैंने हास्य सम्राट गोपाल प्रसाद व्यास जी से ये सवाल पूछा था कि हास्य कविता को अगर हमेशा के लिए जिन्दा रखा जाए तो कैसे ? जवाब में उन्होंने यही कहा था कि कुण्डलिया छंद ही इसे अधिक प्रभावी और जनप्रिय बना सकता है । काका हाथरसी इसी छंद से पाठकों और श्रोताओं के बीच लोकप्रिय रहे । आलोचक भले यह कहते रहें कि हास्य और व्यंग्य कवित ने कुण्डलिया छंद की महत्ता को कम किया है पर हमें यह भी ध्यान में रखना होगा इसी हास्य, व्यंग्य ने इस छंद को अधिक लोकप्रिय सहज भी बनाया है ।

कविता की कोई भी विधा हो कवि को रवि से परे जाना ही होता है । बात को मुक्त रखना जितना आसान है, शब्दों को पूरे नियम और मात्रा में बांधना उतना ही कठिन होता है। उत्तर आधुनिक युग ने कविता को बंधनों मुक्त अवश्य किया है पर कविता की तात्विकता भी कहीं खोती हुई नज़र आ रही है । प्रिंट मीडिया के आने से कविता की संस्कृति का घनत्व विकसित होता रहा है। सोशल मीडिया ने तो कविता को सम्पादन से भी आजाद कर दिया है। अब बेसलाही कविता धड़ल्ले से मोबाइल की अंगुलियों पर नाच रही है पर छंदों का लुप्त होना और सम्पादन हीन बेतुकी कविताओं का सामने आना एक बड़ी चिंता और चुनौती का विषय है ।